

व्याकरणदर्शन में वाक्-चतुष्टय का सिद्धान्त

(भर्तृहरि के विशेष सन्दर्भ में)

➤ डॉ. सोनमती पटेल¹

सारांश

भारतीय ज्ञानपरंपरा में वाक् तथा वाग्भेद का बृहद्-स्वरूप वेदों में दिखाई पड़ता है। ऋग्वेद के वाक्सूक्त में वाक् का एक शक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। वाक् सूक्त के प्रथम मन्त्र में वाक् शक्ति अपने विराट स्वरूप, सर्वव्यापकता और सामर्थ्य को प्रकट करते हुए कहती है- मैं ही रुद्रों, वसुओं, आदित्यों और विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण, इन्द्र और अग्नि तथा दोनों अश्विनी कुमारों को धारण करती हूँ। (१०.१.२५.१)

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप के वर्णन में नेति नेति की शैली में वाक् का सन्दर्भ दिखाई पड़ता है। जहाँ उपनिषद् की दृष्टि में कि ब्रह्म असीम है उसे सीमित वाणी और मन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। (ब्रह्मनन्दवल्ली, २.९)। व्याकरणदर्शन में भर्तृहरि वाक् को शब्दब्रह्म के रूप में वर्णन करते हुए सर्वप्रथम सैद्धान्तिक रूप से वाक् को परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी के रूप में विभाजित करते हैं। भर्तृहरि की दृष्टि में परावाक् व्यावहारातीत है। पश्यन्ती योगियों की समाधि का विषय है। मध्यमा वाक् का उपादानकरण बुद्धि है जबकि वैखरी मनुष्यमात्र के परस्पर व्यवहार का माध्यम है। शैवदर्शन में वाक् की व्याख्या शक्ति के रूप में की गई है। जबकि आदिशंकराचार्य अद्वैतवेदान्त के माध्यम से यह कहने का प्रयास करते हैं कि परमज्ञान वहीं उत्पन्न होता है जहाँ वाणी और मन शांत हो जाते हैं।

इस प्रकार भारतीयज्ञानपरंपरा में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से वाक् सिद्धान्त को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में वाक् सिद्धान्त को विशेषरूप से भर्तृहरि के दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- वाक्, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी।

वाक् शब्द वच् भाषमाणे धातु से क्तिप्-प्रत्यय करके उत्पन्न होता है। वाक् का सर्वप्रथम सन्दर्भ हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है-
“चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यामाविवेश॥”²
आचार्य यास्क ने निरुक्त के तेरहवें अध्याय में महादेव को यज्ञपुरुष कहकर प्रस्तुत मन्त्र की व्याख्या वैदिक दृष्टि से की है। यास्क के अनुसार चार वेद उस महादेव के चार

¹ सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, आर्यकन्या डिग्री कालेज, प्रयागराज

² ऋग्वेद, ४.५८.३

सींग हैं, तीन सवन अर्थात् प्रातः सवन माध्यन्दिन सवन और सायं सवन ये तीन काल भेद और उसके पैर हैं। प्रायणीय और उदयनीय यह दो उसके शिर हैं। गायत्री इत्यादि सात छन्द उसके साथ हाथ हैं॥ वह मंत्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से बद्ध और संबद्ध है। वह महादेव मनुष्यों में यज्ञ के लिए प्रविष्ट है।¹

महर्षि पतंजलि महाभाष्य में प्रस्तुत मंत्र की व्याख्या महादेव को शब्द (वाक्) कहकर उसकी शाब्दिक व्याख्या करते हैं। महर्षि पतंजलि कहते हैं उस महान् देव अर्थात् शब्दब्रह्म के चार सींग हैं- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। वह काल पुरुष है। भूत, वर्तमान और भविष्य उसके तीन पैर हैं॥ शब्द ब्रह्म के दो सिर ही उसके दो स्वरूप हैं नित्य और अनित्य (एक स्फोट और दूसरा ध्वनि)। उसके सात हाथ ही उसकी सात विभक्तियां हैं (प्रथमा द्वितीया तृतीया चतुर्थी पंचमी षष्ठी सप्तमी) शब्द ब्रह्म तीन स्थानों पर बंधा हुआ है- हृदय कण्ठ और शिर। इसको वृषभ इसलिए कहा गया क्योंकि यह अर्थतत्त्व की वृष्टि करता है। यह महादेव सब मनुष्यों में अनुस्यूत है। मर्त्य (मनुष्य) उस अक्षर, शब्दब्रह्म और अमर्त्य महादेव का साम्य प्राप्त करने के लिए व्याकरण का आश्रय लेते हैं²।

भर्तृहरि इस भाव को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं शब्द दो प्रकार के हैं- अनित्य और नित्य। इनमें से प्रथम व्यावहारिक है। वाक्त्व पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है। द्वितीय समस्त व्यवहारों का मूलभूत, क्रमरहित, सब के हृदय में सन्निविष्ट, कारणभूत एवं समस्त विकृतियों का आश्रय है³।

ब्राह्मण ग्रन्थों में और भी स्पष्ट रूप से वाक् का स्वरूप दिखाई पड़ता है। “वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे”⁴ अर्थात् परावाक् से ही सम्पूर्ण विश्व निःसृत हुआ है।

वेद के अनन्तर वाक् को दार्शनिक धरातल पर भर्तृहरि ने सर्वाधिक स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया है। वेद का ही अनुकरण करते हुए भर्तृहरि कहते हैं –

“न सोऽस्ति प्रत्यये लोके यः शब्दानुगमादृते।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।”⁵

अर्थात् इस संसार में ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो शब्द से न प्रकट होता हो अर्थात् किसी भी ज्ञान को प्रकट करने का एकमात्र माध्यम शब्द ही है। चाहे वह जाग्रतावस्था का ज्ञान हो या प्रसुप्तावस्था का।

विभाजन की दृष्टि से वाक् का स्वरूप सर्वप्रथम हमें ऋग्वेद में दिखाई पड़ता है-

“चत्वारि वाक् परिमिता पदानि। तानि विदुर्ब्रह्मणा ये मनीषिणः।

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति॥”⁶

अर्थात् विद्वान् मनीषीगण वाणी के चार रूप मानते हैं – परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। इन चारों वाक् में परा, पश्यन्ती, मध्यमा गुप्त रूप में छिपे रहते हैं, जबकि वैखरी वाक् मनुष्य के व्यवहार का विषय बनती है।

प्रस्तुत ऋग्वैदिक मन्त्र की व्याख्या निरुक्तकार ने निरुक्त में चार पद्धतियों से की है। प्रथम आर्षपद्धति – ओम्, भूः, भुवः, स्वः इस महाव्याहृति के रूप में वाक्त्व का विभाजन प्राप्त होता है। द्वितीय वैयाकरणों की दृष्टि

1 चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः। त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि। द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये। सप्त हस्तासः सप्त छंदांसि। त्रेधा बद्धो मन्त्रब्राह्मणकल्पैः। महान् देवो यद्यज्ञो मर्त्यान् आविवेश। एष हि मनुष्यानाविशति यजनाय॥ निरुक्त, १३.६

2 महाभाष्य, पण्यशाहिनक।

3 इह द्वौ शब्दात्मनौ कार्यौ नित्यश्च। तत्राद्यो व्यावहारिकः पुरुषस्य वागात्मनः। प्रतिबिम्बोपग्राही, अन्त्यस्तु सर्वव्यवहारयोनिः। (पुण्यराज), वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, १३२।

4 ब्राह्मण ग्रन्थ।

5 वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, ११४

6 ऋग्वेद, १/१६४/४५

में नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के रूप में वाक्त्व का विभाजन प्राप्त होता है। तृतीय याज्ञिकों की दृष्टि में मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और व्यावहारिक में। तथा चतुर्थ नैरुक्तों की दृष्टि में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद¹ के रूप में वाग्-भेद दिखाई पड़ता है।।

महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य में उक्त मन्त्र की व्याख्या में कहते हैं कि मनीषी विद्वान् ही उन विभागों को जानते हैं।— “चत्वारि वाक्परिमिता पदानि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चातानि विदुर्ब्रह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति गुहायां त्रीणि निहितानि नेङ्गयन्ति न चेष्टन्ते न निमिषन्तीत्यर्थः। तुरीयं या एतद्वाच्यो यन्मनुष्येषु वर्तते चतुर्थमित्यर्थः”²

प्रस्तुत पद विभाजन पर नागेश उद्योत³ में टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि इन चार विभागों के पारिभाषिक नाम हैं— परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी। इनमें से तीन— नाम, आख्यात और उपसर्ग अर्थात् परा पश्यन्ती और मध्यमा में किसी भी प्रकार की चेष्टा नहीं होती है। वे ज्ञान सामान्य के विषय नहीं हैं। व्याकरणरूपी दीप से वैयाकरण इन तीनों को प्रकाशित करते हैं। नागेश की दृष्टि में व्याकरण ही वैखरी और चतुर्थी⁴ है। और यही मनुष्य के व्यवहार का विषय है। जबकि कैयट⁵ प्रस्तुत वाक् विभाजन में चारों पदों (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) के चार चार भेद परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी रूप से स्वीकार करते हैं।

वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में भर्तृहरि एवं हेलाराज ने उक्त मन्त्र तथा वैखरी आदि चार वाणियों का दार्शनिक

दृष्टि से स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है। भर्तृहरि ब्रह्मकाण्ड में कहते हैं—

“वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्च एतदद्भुतम्।

अनेकतीर्थभेदायाः त्रैय्या वाचः परं पदम्”⁶

अर्थात् वाणी के तीन पद वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती के रूप में माने गए हैं और ये तीनों ही पद व्याकरण के क्षेत्र में आते हैं। त्रिपदा वाक् अनेक स्थानों से उत्पन्न होती है तथा इन तीन पदों से भी ऊपर एक चौथा या सर्वोच्च पद है। और यह सर्वोच्च पद ही भर्तृहरि के मत में परावाक् है। जिसे भर्तृहरि ने शब्दब्रह्म की संज्ञा से विभूषित किया है।

“अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः”⁶ ॥

अर्थात् जो ब्रह्म नित्य वृंहणशील है तथा जिसका आदि और निधन संभव नहीं है वही वास्तव में शब्दतत्त्व है उसमें किसी भी प्रकार का क्षरण संभव नहीं है। अतः वह अक्षर है। उसी शब्दब्रह्म का यह संपूर्ण विश्व विवर्त है।

भर्तृहरि कहते हैं— शब्द का वास्तविक स्वरूप प्रयोक्ता की अपनी आत्मा या बुद्धि में स्थित है। अथवा वह प्रयोक्ता की आत्मा बनकर स्थित है। यही रूप नित्य कहलाता है। यही परावाक् है। कार्य शब्द का वह रूप है जो व्यवहार में आता है। और जो श्रुति रूप में प्रतिबिम्बित होता है। यह अन्तरात्मास्थित शब्द ही महान् ऋषभ है। इसी को वाक् के कुशल प्रयोक्ता साधना चाहते हैं। विविधरूपों में यही विश्वप्रक्रिया का मूल है⁷।

¹ कतमानि तानि चत्वारि पदानि। ओंकारो महाव्याहृतयश्चेत्यार्षम्। नामाख्याते- चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणाः। ऋचो यजुंसि सामानि चतुर्थी व्यावहारिकीति नैरुक्ताः। निरुक्त, १३.१

² महाभाष्य, पण्यशाह्निक।

³ महाभाष्य, पण्यशाह्निक, उद्योत।

⁴ महाभाष्य, पण्यशाह्निक, प्रदीप।

⁵ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, १३३

⁶ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, १

⁷ “अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरावस्थितम्। प्राहुर्महान्तं ऋषभं येन सायुज्यमिष्यते। वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, १३१

भर्तृहरि की दृष्टि में शब्दब्रह्म शब्द, संज्ञा, क्रिया या पद के रूप में कोई अवयव नहीं है अपितु वह परावाक् है। भर्तृहरि के वाक्-त्रयी का अभिप्राय यह है कि पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी तक ही वाक्तत्त्व का विवेचन संभव है परावस्था में द्वैत बुद्धि का सर्वथा अभाव हो जाता है।

भर्तृहरि मत में पश्यन्ती वाक् बुद्धिस्थ शब्द की वह स्थिति है जिसमें शब्द अखण्ड रूप में मन या बुद्धि में रहता है। व्याकरण का साधुत्व-असाधुत्व निर्णय वस्तुतः इसी पद में अधिक प्रभावी रहता है। क्योंकि पश्यन्ती में ही ज्ञान अपने शुद्ध रूप में रहता है। पश्यन्ती स्वप्रकाशरूप है। वह लोकव्यवहारातीत है।¹

पश्यन्ती वाणी के विवेचन और विश्लेषण से शब्द के साधुत्व का ज्ञान होता है और योग से पश्यन्ती वाणी की प्राप्ति होती है। अर्थात् पश्यन्ती वाणी योगियों के अधीन होती है। “तस्या एव वाचो व्याकरणेन साधुत्वज्ञानलभ्येन वा शब्दपूर्वेण योगेनाधिगम्य इति एकेषामागमः”²। वाक्यपदीय के टीकाकार हेलाराज कहते हैं - पश्यन्ती वाणी विभागरहित होती है। उसमें क्रम पूर्णतः लीन होता है। जो भीतर अपने ही स्वरूप की ज्योति है। अत्यन्त सूक्ष्म तथा कभी न नष्ट होने वाली वाक् पश्यन्ती कही जाती है³।

सोपज्ञवृत्ति में दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए हेलाराज कहते हैं—“गौरिव प्रक्षरत्येका रसमुत्तमशालिनी। दिव्यादिव्येन रूपेण भारती गौः शुचिस्मिता”। एक शुद्धपश्यन्ती नामक वाणी गाय के समान मध्यमा और वैखरी रूप रस का क्षरण करती है। इस पश्यन्ती के दो रूप हैं - एक दिव्य और द्वितीय अदिव्य।

सोमानन्दपाद ने शिवदृष्टि के द्वितीय आह्निक में वैयाकरणों के शब्दब्रह्माद्वयवाद का खण्डन करने के लिए पूर्वपक्ष के रूप में वैयाकरणों के सिद्धान्तों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

“अथास्माकं ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवरूपता।

वैयाकरणसाधूनां पश्यन्ती सा परा स्थितिः”⁴।

शैवदर्शन में पश्यन्ती को ही परा कहना उनका अज्ञानमात्र है। वैयाकरणों की दृष्टि में परा की स्थिति पश्यन्ती से ऊपर है।

“शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति”⁵।

कहा गया है कि शब्दब्रह्म में निष्णात ही परब्रह्म को प्राप्त करेगा। यहाँ शिवदृष्टि में सोमानन्द ने शब्दब्रह्म का तात्पर्य पश्यन्ती के अपररूप व्यावहारिक पश्यन्ती को माना है। परपश्यन्ती तो लोकव्यवहारातीत है।

व्याकरणदर्शन में भर्तृहरि स्पष्टतः पश्यन्ती के रूप की चर्चा वाक्यपदीयम् की वृत्ति में करते हैं। भर्तृहरि की दृष्टि में अपरपश्यन्ती को प्रकृति और परपश्यन्ती को पराप्रकृति कहा जाता है। पराप्रकृति का ही दूसरा नाम शब्दब्रह्म है। और प्रकृति या अपरपश्यन्ती का नाम प्रतिभा, सत्ता, महानात्मा है। पराप्रकृति की ही स्वाभाविक परिणति अपरपश्यन्ती है। जैसे - सोते हुए पुरुष की जागरणावस्था में स्वाभाविक परिणति होती है। उसी प्रकार एक शब्दब्रह्म में लोकव्यवहारातीत का स्वाभाविक परिणाम व्यावहारिक पश्यन्ती है।

इस प्रकार पश्यन्ती के प्रकृति और पराप्रकृति नामक दो भेद वृत्तिकार को अभीष्ट है। “शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिः”⁶ कारिका में भर्तृहरि ने प्रतिसंहतक्रम अर्थात्

¹ “परन्तु पश्यन्तीरूपमनपञ्चमसंकीर्णलोकव्यवहारातीतम्”। वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, सोपज्ञवृत्ति, १३३

² वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, सोपज्ञवृत्ति, १३३

³ अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहतक्रमा। स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागानपायिनी॥ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड,

सोपज्ञवृत्ति, १३३

⁴ शिवदृष्टिः, द्वितीयमाह्निकम्, १

⁵ शिवदृष्टि, द्वितीयाह्निकम्, १०

⁶ ब्रह्मकाण्ड, ११०

अपरपश्यन्ती की स्थिति महाकारण वाक्तृत्व में स्वीकार की है। यही परपश्यन्ती या पराप्रकृति ही महाकारण है। भर्तृहरि अपरपश्यन्ती को प्रतिसंहतक्रम तथा परपश्यन्ती को उपसंहतक्रम की संज्ञा देते हैं। “प्रतिसंहतक्रमा सत्यप्यभेदे समाविष्टक्रमशक्तिः पश्यन्ती”¹

मध्यमा का सम्बन्ध बुद्धि और उच्चारण की प्रयत्नावस्था से है। जिसमें वाणी सूक्ष्म व्यंग्य रूप में रहती है। मध्यमा वाणी अन्तः संकल्परूप होती है।

हेलाराज वृत्ति में मध्यमा को परिभाषित करते हुए कहते हैं “मध्यमा तु अन्तःसन्निवेशिनी परिगृहीत क्रमेव बुद्धिमात्रोपादाना”²। अर्थात् मध्यमा वाक् का उपादान कारण बुद्धि है। इसका स्थान आस्य (मुख) नहीं है, किन्तु वर्णात्मक क्रम को ग्रहण करती हुई सी हृदयस्थ रहती है। वृत्तिकार के “अन्तःसन्निवेशिनी ” शब्द पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए आचार्य श्री वृषभ कहते हैं – जो कण्ठादि स्थानों में तो नहीं रहती, किन्तु ‘इस शब्द का उच्चारण करूंगा’ इस प्रकार का बुद्धि में जो शब्दाकार बनता है, वही मध्यमा वाक् है। मध्यमा वाक् बुद्धि में विशिष्टक्रम को स्वीकार करके ही भासित होती है।

मध्यमा को प्राणवृत्ति से अतिक्रान्त कहा जाता है। क्षेमराज ने ‘साम्बपञ्चाशिका’³ में ‘प्राणसङ्गात् प्रसूतान्’ के सन्दर्भ में प्राण की त्रिविध स्थिति स्वीकार की है-

१. पश्यन्ती में चित्ज्योति की प्रधानता और सूक्ष्मप्राण गौण रहता है। उस दशा में भी वर्ण उत्पन्न होते हैं।

२. मध्यमा में चित्ज्योति गौण होती है और सूक्ष्मप्राण प्रधान।

३. वैखरी में स्थूलप्राण प्रधान होता है।⁴

यद्यपि वैखरी के सन्दर्भ में क्षेमराज ने चित्ज्योति की चर्चा नहीं की है लेकिन चित्ज्योति के बिना उच्चारण संभव नहीं है। अतः वैखरी में भी चित्ज्योति को स्वीकार करना चाहिए।

वाक्यपदीय के वृत्तिकार कहते हैं –

“केवलं बुद्ध्युपादाना क्रमरूपानुपातिनी।

प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते”⁵।

अर्थात् बुद्धि ही जिसका उपादान कारण है। जो क्रमयुक्त है और प्राणवृत्ति से परे है। वह सूक्ष्म है हृदयस्थ है। यद्यपि उसमें क्रमों का संहार है फिर भी क्रमशक्ति से युक्त है। वह अभिव्यक्ति से रहित है। उसमें पदों का प्रत्यक्ष नहीं होता। वह व्यवहार का कारणभूत है। भर्तृहरि की दृष्टि में यही मध्यमा वाक् है।

भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित वाक्त्रयी में वैखरी वाक् में ही लोकव्यवहार सम्भव है। वाक्यपदीय के टीकाकार हेलाराज महाभारत के अश्वमेध पर्व⁶ के अन्तर्गत ब्रह्मगीता का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- कि वैखरी वाणी, कंठ, तालु आदि स्थानों में वायु के विवृत होने पर जब विकृत वर्ण का स्वरूप धारण कर लेती है तब उस वाणी को वैखरी वाणी कहते हैं। इसमें प्राणवायु का संचालन रहता है। अतः वह प्राणवृत्ति से निबद्ध और सम्बद्ध रहती है।

वैखरी शब्द की व्याख्या करते हुए जयन्तभट्ट न्यायमञ्जरी के प्रथमाह्निक में कहते हैं- वैखरी शब्द का अर्थ है – देह और इन्द्रियो का समूह, उसमें उत्पन्न होने के कारण इसे वैखरी कहा जाता है। और यही श्रवण का

¹ ब्रह्मकाण्ड, ११०, वृत्ति

² वाक्यपदीयम्, वृत्ति, १४३

³ साम्बपञ्चाशिका, ४

⁴ तत्र चित्ज्योतिषि गुणीभूतसूक्ष्मप्राणसङ्गात् पश्यन्त्याम्। गुणीभूतचित्सूक्ष्मप्राणसङ्गान्मध्यमायाम्।

स्थूलप्राणसङ्गाद्वैखर्या वर्णा जायन्ते। साम्बपञ्चाशिका, क्षेमेन्द्रकृतव्याख्या, ४

⁵ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, सोपज्ञवृत्ति, १३३

⁶ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, सोपज्ञवृत्ति, १३३

विषय है¹। वस्तुतः व्याकरण का विषय वैखरी वाणी ही है। भर्तृहरि उपर्युक्त तीनों वाणियों को स्वीकार कर व्याकरण को वाणी का परमपद कहते हैं। यही व्याकरणस्मृति भी है²। इसे ही मोक्ष का द्वार एवं वाणी का चिकित्सक भी कहा गया है³। वैखरी वाक् दूसरों के द्वारा अनुभूयमान तथा श्रवणयोग्य होती है। वृत्तिकार कहते हैं- “परैः संवेद्यं यस्याः श्रुतिविषयत्वेन प्रतिनियतं श्रुतिरूपं सा वैखरी”⁴॥

नागेशभट्ट परमलघुमञ्जूषा में स्फोटनिरूपण के सन्दर्भ में वाक्त्व पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-वाणी के चार रूप हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। नागेश की दृष्टि में परावाक् वह है जो मूलाधारचक्र में रहने वाली, वायु के संस्कार से युक्त मूलाधार में ही रहने वाली, शब्दब्रह्मरूप, चेष्टा से रहित एवं कारणबिन्दुरूप वाणी परा कही जाती है। यह लोकव्यवहार से अतीत अत्यन्त सूक्ष्म निरवयव एवं अनपायिनी है। भर्तृहरि की दृष्टि में यही परावाक् अनदिनिधन है जिसे शब्दब्रह्म की संज्ञा से विभूषित किया गया है॥

पश्यन्ती को परिभाषित करते हुए नागेश कहते हैं- नाभिपर्यन्त तक आने वाले उस वायु से अभिव्यक्त होने वाली, केवल मन का विषय बनने वाली वाक् पश्यन्ती कही जाती है⁵। यह वाणी भी व्यवहार के योग्य नहीं होती। इन दोनों परा एवं पश्यन्ती वाणियों में परा वाक् योगियों की निर्विकल्पक समाधि का विषय बनती है

तथा पश्यन्ती वाक् योगियों की सविकल्पक समाधि का विषय बनती है⁶। पश्यन्ती वाणी मन का विषय है। क्योंकि यह मन का अवस्थान है।

मध्यमा को परिभाषित करते हुए नागेशभट्ट कहते हैं- नाभि से हृदय तक आने वाली वायु से अभिव्यक्त उन उन अर्थों के वाचक शब्दों का स्फोटरूप दूसरे के कान से ग्रहण करने योग्य न होने के कारण सूक्ष्म जप आदि में बुद्धि के द्वारा ही ग्रहण करने योग्य वाणी मध्यमा है⁷। अन्ततः हृदयस्थान से मुखतक आने वाली तथा मूर्धा से छूकर कण्ठ, तालु आदि स्थानों में अभिव्यक्त होने वाले, दूसरों के द्वारा सुनने योग्य वाक् वैखरी कही जाती है⁸।

नाद के सन्दर्भ में नागेश कहते हैं- नाद मध्यमा और वैखरी दोनों में होता है, लेकिन मध्यमा का नाद परश्रोतग्राह्य नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि नाद तो मध्यमा एवं वैखरी दोनों से उत्पन्न होता है लेकिन मध्यमा का नाद अर्थ एवं उसके अभिव्यंजक शब्द स्फोट का व्यंजक है। सूक्ष्म तथा स्वश्रोत्र तक ही ग्राह्य है। और वैखरी का नाद ध्वनिमात्र है एवं परश्रोतग्राह्य तथा निरर्थक है। मध्यमानाद व्यंग्य शब्द स्फोट रूप एवं नित्य होता है। किन्तु वैखरी का नाद स्फोट का वाहक एवं अनित्य व निरर्थक होता है। अतः वास्तविक अर्थ एवं शब्द का सम्बन्ध निर्धारित करने वाली वाणी मध्यमा ही है। मध्यमा बुद्धि का विषय है, क्योंकि इस अवस्था में पहुँचने के बाद ही अर्थ बुद्धिगोचर होता है। और उसके

¹ बिखर इति देहेन्द्रिय संघात उच्यते, तत्र भवा वैखरी॥ जयन्तभट्ट, न्यायमञ्जरी

² “सैषा व्याकरणस्मृतिः”, वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, १४२

³ “तद्वारमपवर्गस्य वाङ्मूलानां चिकित्सितम्”। वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, १४

⁴ वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, सोपज्ञवृत्ति, १३३

⁵ नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन वायुनाऽभिव्यक्ता मनोगोचरीभूता पश्यन्ती वागुच्यते। परमलघुमञ्जूषा, स्फोटनिरूपणम्।

⁶ एतद्वयं वाग्ब्रह्म योगिनां समाधौ निर्विकल्पकसविकल्पकज्ञान विषय इत्युच्यते। परमलघुमञ्जूषा, स्फोटनिरूपणम्।

⁷ ततो हृदयपर्यन्तमागच्छता तेन वायुनाऽभिव्यक्ता तत्तदर्थवाचकस्फोटशब्दरूपा श्रोतग्रहणायोग्यत्वेन सूक्ष्मा जपादौ बुद्धिनिर्ग्राह्या मध्यमा वागुच्यते। परमलघुमञ्जूषा, स्फोटनिरूपणम्।

⁸ तत आस्यपर्यन्तमागच्छता तेन वायुनोर्ध्वमाकामता च मूर्धानमाहत्य परावृत्य च तत्तत्स्थानेष्वभिव्यक्ता परश्रोत्रेणापि ग्राह्या वैखरी वागुच्यते। परमलघुमञ्जूषा, स्फोटनिरूपणम्।

वाचक शब्द का निर्धारण होता है कि उस अर्थ को किस शब्द के माध्यम से व्यक्त किया जाय।

स्फोटनिरूपण के प्रसंग में ही नागेश चारों वाणियों को उनके स्थान की दृष्टि से भी स्पष्ट करते हैं।¹

परा वाक् वह है जो मूलचक्र में स्थित रहती है। पश्यन्ती का स्थान नाभिप्रदेश है। मध्यमा हृदय में स्थित रहती है तथा वैखरी कण्ठ में रहती है। वैखरी द्वारा किया गया नाद दूसरों के द्वारा श्रवणयोग्य होता है। तथा मध्यमा द्वारा किया गया नाद स्फोट का व्यञ्जक कहा जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि वाक् का माध्यम न हो तो कभी भी किसी की भावना को प्रकाशित नहीं किया जा सकता। संपूर्ण संसार को आपस में जोड़ने वाली और पारस्परिक व्यवहार की माध्यमभूता शक्ति वाक् तत्त्व ही है।

भर्तृहरि की दृष्टि में वाक् के चार सोपान –परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी हैं। इनमें से परा शब्दब्रह्म है। जो व्याकरण से परे है जिसे भर्तृहरि अनादिनिधन की संज्ञा से विभूषित करते हैं। तथा पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी तीन ऐसे पाद हैं जिनका विवेचन व्याकरण की दृष्टि से संभव है।

सन्दर्भ सूची

1. अवस्थी, श. श. (2010). वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्ड). चौखम्बा विद्याभवन.

2. चतुर्वेदी, रा. (1986). शिवदृष्टिः. वाराणसेय संस्कृत संस्थानम्.
3. द्विवेदी, क. (2008). अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन. विश्वविद्यालय प्रकाशन.
4. द्विवेदी, रा. च. (अनुवादक). (1981). भर्तृहरि (प्राचीन टीकाओं के प्रकाश में वाक्यपदीय का एक अध्ययन). राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.
5. भर्तृहरि. (2015). वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड (ह. नि. तिवारी, संपा.). चौखम्बा.
6. भट्ट, ज. (1982). न्यायमञ्जरी (गौ. शास्त्री, संपा.). सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय.
7. भट्ट, ना. (1984). परमलघुमञ्जूषा (ज. त्रिपाटी, संपा.). कृष्णदास अकादमी.
8. मिश्र, ह. (1994). व्याकरणतन्त्र का काव्यशास्त्र पर प्रभाव. ईस्टर्न बुक लिंकर्स.
9. यास्क. (1981). निरुक्त (कि. वाजपेयी, संपा.). वाणी प्रकाशन.
10. राजानकक्षेमराज. (2009). साम्बपञ्चाशिका (व्याख्या सहित). ईश्वर आश्रम ट्रस्ट.
11. वर्मा, स. (1960). वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्. मुन्शीलाल मनोहरलाल.
12. शास्त्री, श्री. (2000). हेलाराज का व्याकरणदर्शन को योगदान. विद्यानिधि प्रकाशन.
13. शास्त्री, श्री. (2012). भर्तृहरि और सोपज्ञवृत्ति. विद्यानिधि प्रकाशन.
14. सोमानन्द. (1991). शिवदृष्टि. आरोमा पब्लिशिंग हाउस.

¹ “परा वाङ्मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।

हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा।

वैखर्या हि कृतो नादः पर श्रवणगोचरः।

मध्यमया कृतो नादः स्फोटव्यञ्जक उच्यते,॥ परमलघुमञ्जूषा, स्फोटनिरूपणम्।